गणित की प्रकृति

❑ शीतल प्रसाद त्यागी

इस लेख में वस्तुतः एक ज्ञान अनुशासन के रूप में गणित की प्रकृति की विवेचना की गयी है। लेख के आरंभ में गणित विषयक कुछ भ्रान्तियों की चर्चा की गयी है, जैसे- गणित को विज्ञान के रूप में परिभाषित करना; गणित को रोजमर्रा के काम में उपयोगी बताना या फिर गणित अधिगम को रोचक बनाने के हास्यास्पद उपक्रम। बाद में गणित की वैचारिक परम्पराओं (विचारधारा के स्कूल) का उल्लेख करते हुए इसकी विशिष्ट प्रकृति पर विचार किया गया है। लेखक के अनुसार गणित की शक्ति और साधारणीकरण उसके उपयोग से परे जाने (ट्रान्सेन्ड) के कारण ही है। गणित अपनी प्रकृति के कारण अपने अधिगम उद्देश्यों में बहुत सीमित है।

इस लेख में गणित विषय की प्रकृति की व्याख्या की गई है। गणित को विषय के मुकाबले एक ज्ञान-अनुशासन के रूप में प्राथमिकता लेखक स्वयं दे रहा है । इसका कारण यह है कि अनुशासन अधिक विशिष्ट और गंभीर होता है। यह लेख ऐसे व्यक्ति के लिए विशेष महत्व का हो सकता है जो गणित का भले ही साधारण विद्यार्थी हो, लेकिन इस विषय को समग्रता से समझना चाहता है । लेख केवल गणितज्ञों को ध्यान में रखकर ही नहीं लिखा गया है । इस विषय के बारे में कई भ्राँतियां प्रचलित हैं जो अधिकतर या तो अज्ञानता के कारण या गणित पढ़ने-पढ़ाने वाले व्यक्तियों के छद्म अहं का परिणाम हैं । लेखक ऐसे लोगों को पिछली सर्दी में दिये गये हार्डी के एक व्याख्यान - 'ए मेथमेटीशियनस ऑपोलॉजी'- को पढ़ने की सलाह देगा । इस व्याख्यान से गणित की प्रकृति को समझने में बहुत सहायता मिलेगी ।

हार्डी अपने व्याख्यान में 'गणित क्या है' जैसे प्रश्न उठाने को महत्व नहीं देते । उनका कहना है कि जब तक मुझमें गणित सर्जन की क्षमता है, तब तक मैं यह जानने के लिए उत्सुक नहीं हूँ कि गणित क्या है ? लेखक गणितज्ञ की इस मानसिकता से सहमत नहीं है। यद्यपि यह सही है कि जो कविता का मूल्यांकन करते हैं, अर्थात आलोचक हैं, वे कवि हों यह आवश्यक नहीं । सृजन की अपेक्षा आलोचना दूसरे दर्जे का सृजन है। साहित्य में तो भावुक पाठक भी साहित्य को समृद्ध कर सकता है । गणित साहित्य नहीं है, फिर भी गणित को समग्रता में समझने वाले या संघटित रूप से इसकी प्रकृति और इसकी विभिन्न शाखाओं की एकता की जड़ें खोजने वाले विचारकों का योगदान किसी भी रूप में कम नहीं आंका जा सकता । सन् 1850 के बाद संपूर्ण गणित की संरचना को समझने के प्रयास शुरू हो गए थे । पियानो ने प्राकृत संख्याओं को स्वयं- सिद्ध मान्यताओं (एग्जिअम) में ढालकर एक व्यवस्था बनाने का प्रयास किया, जिसे समुच्चय सिद्धांत (सेट थ्योरी) और समूह-सिद्धांत (ग्रुप थ्योरी) ने दूसरी संख्याओं की व्यवस्था की उप-व्यवस्था का एक व्यापक संरचनात्मक रूप दिया । इसी प्रकार फ्रेजे ने भी तर्क की संरचना को समझने का प्रयास शुरू किया।

1875 में केन्टर के समुच्चय सिद्धांत (सेट-थ्योरी) के आ जाने से गणित के क्षेत्र को न केवल व्यापकता मिली बल्कि इसकी विभिन्न शाखाओं की संघटित संरचना के लिए आधारभूत संकल्पनाएं भी अस्तित्व में आईं । युक्लीडियन ज्यामिति तथा अंकगणित को तो 17वीं शताब्दी में फ्रांस के दार्शनिक और गणितज्ञ रेने डेकार्टे ने पहले ही संघटित कर दिया था। ब्रर्ट्रेन्ड रसल तथा व्हाईट हेड के 'प्रींसीपिया मेथेमेटिका' की दो जिल्दों (वोल्यूम्स) वाली पुस्तक का इस दिशा में बड़ा योगदान है। इस थोड़े से प्रयास से लेखक यह प्रतिपादित करना चाहता है कि गणित को संघटित रूप में एक अनुशासन बनाने के प्रयत्नों को कुछ बिखरी प्रमेयों के रूप में नहीं आंका जाना चाहिए, बल्कि गणित को समग्र रूप में समझने और संघटित करने का प्रयास एक महत्वपूर्ण कार्य है। किसी गणितीय प्रमेय का महत्व भी इस परिणाम पर निर्भर करता है कि उससे गणित की आधारभूत संकल्पनाएं कितनी स्पष्ट होती हैं; या व्यापक होती हैं; या विषय की समग्र संरचना पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है। समुच्चय सिद्धांत इस दिशा में एक महान योगदान है।

गणित के संदर्भ में प्रचलित भ्रांतियां

हार्डी के विचार से असहमत होने के बाद लेखक गणित के संबंध में प्रचलित कुछ भ्रान्तियों का रेखांकन करना चाहता है । उनमें से पहली गणित को विज्ञान द्वारा परिभाषित करने का प्रलोभन है । कई लोगों द्वारा विशेषत: गणित की पाठ्यपुस्तकों में गणित को विज्ञान के रूप में परिभाषित किया जाता है, जैसे- गणित संख्या तथा स्पेस का विज्ञान है । गणित की ऐसी परिभाषा न केवल

अज्ञानता बल्कि गणित और विज्ञान दोनों ही अनुशासनों को न समझ पाने की घोषणा करती है । गणित अपने रूप, संरचना और तर्क-विधि में विज्ञान से भिन्न है । वास्तव में इस प्रकार की परिभाषा द्वारा गणित की अपेक्षा विज्ञान का वर्चस्व स्थापित करना या मान लेना है, जो सही नहीं है । लेखक यहाँ इस बहस में नहीं पड़ना चाहता कि इनमें से कौन अधिक महत्वपूर्ण है; क्योंकि महत्व के प्रश्न सापेक्षिक होते हैं । इसलिए ऐसे प्रश्न को निरपेक्ष रूप में प्रतिपादित नहीं किया जा सकता । परन्तु इतना जरूर है कि गणित की प्रकृति, विज्ञान तथा मानविकी के अन्य विषयों से भिन्न और विशिष्ट है। इस तथ्य को हम गणित की प्रविधि अर्थात गणित में परिणाम की सत्यता स्थापन की प्रविधि पर प्रकाश डालते समय स्पष्ट करेंगे । यह तो था गणित की विज्ञान से संबंधित भ्रान्ति का प्रश्न ।

दूसरी भ्रान्ति गणित पढ़ने-पढ़ाने वाले लोगों में अधिक पायी जाती है और इससे अपना महत्व बढ़ाने के चक्कर में वे अपने ज्ञान तथा गणित विषय की पहचान दोनों को बहुत हानि पहुँचाते हैं। यह भ्रान्ति है कि गणित बहुत उपयोगी है और उपयोगी होने के कारण यह हर व्यक्ति के लिए अनिवार्य है । इसके पक्ष में लोग बहुत कमजोर तर्क देते हैं, जैसे गृहिणी को भी गणित की आवश्यकता होती है । इन लोगों के अनुसार छोटा, मोटा, जोड़, घटा या गणना गणित है । जिस प्रकार साधारण भाषा और साहित्य भिन्न है, उसी प्रकार गणित और दैनिक जीवन में उपयोगी हिसाब-किताब में बहुत अन्तर है । इसका सामान्य सा उदाहरण होगा dy/dx जैसी संकल्पना, संकेत, शब्द और अर्थ साधारण जीवनयापन में कभी काम नहीं आयेंगे। शायद ऐसा ही हुआ हो, जिसके कारण युक्लिड़ के एक विद्यार्थी द्वारा यह पूछे जाने पर कि जिन ज्यामितीय प्रमेयों को वे सिद्ध कर रहे हैं उनका क्या लाभ है, युक्लिड ने उत्तर दिया था कि इसे थोड़ा धन दे दो और एकेडेमी से जाने के लिए कहो ।

इसमें कोई शक नहीं कि ज्यामितीय प्रमेयों की उपपत्ति किसी गृहिणी के किसी काम नहीं आ सकती। इस तथ्य की वास्तविकता गणित की प्रकृति को जानकर ही समझी जा सकती है । हार्डी कहते हैं कि गणित उपयोगी है, लेकिन उपयोगी होना इसकी प्रकृति नहीं है, यह आकस्मिक तौर पर उपयोगी है । इसका महत्व भी इसके उपयोगी होने के कारण नहीं है । गणित की शक्ति और साधारणीकरण उसके उपयोग से परे जाने (ट्रान्सेड) के कारण ही है । परन्तु यह भ्रांति इतनी फैल चुकी है कि भारत में अनेक अग्रणी शोध पत्रिकायें ऐसे लेखों को संशोधन हेतु वापस भेज देती है, जिनमें गणित को उपयोगी न कहा गया हो । लेखक को ऐसा ही एक अनुभव हुआ जब उसके शोध छात्र द्वारा तैयार शोध-पत्र को एन.सी.ई.आर.टी. से निकलने वाली एक शोध पत्रिका में मूलरूप में नहीं प्रकाशित किया गया। लेख को संशोधित कर (गणित को अत्यधिक उपयोगी बताकर) कमजोर बनाया गया तब कहीं जाकर वह प्रकाशित हो पाया।

गणित मूलत: संज्ञान प्रधान है। यह बहुत कम कौशल है । इससे भी कम इसमें राग का समावेश है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि गणित सृजन में आनन्द न हो या सौंदर्यपरकता न हो । यह अमानविक बिल्कुल नहीं है। गणित के सृजनकर्ता को वही आनन्द आता है जो कविता लेखक को । परन्तु इस को ग्रहण करने वाले व्यक्ति कविता से प्रभावित होने वाले व्यक्तियों के समान नहीं होते । यद्यपि कई गणितज्ञ, साहित्य, दर्शन तथा संगीत के प्रति उतने ही संवेदनशील थे जितना कोई भी संवेदनशील व्यक्ति हो सकता है।

तीसरी प्रकार की भ्रान्ति शैक्षिक संस्थाओं, विशेष रूप से अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं में अधिक प्रचलित है और यह विकट समस्या उत्पन्न करती है। वह है, गणित अधिगम को रुचिकर कैसे बनाया जाये। गणित से अनभिज्ञ तथा विज्ञान के प्रचार प्रसार में लगे लोग इसका समाधान, गणित को जीवन से संबंधित करके तथा प्रयोगात्मक विधि द्वारा गणित पढ़ाकर निकालते हैं। दोनों समाधान गणित की प्रकृति से मेल नहीं खाते । पहले भी यह बात कही जा चुकी है कि गणित उपयोगी है लेकिन उपयोग के परे भी है और गणित अपने असली रूप में उपयोग से परे ही है । इसी प्रकार गणित का प्रादुर्भाव जीवन से हुआ, परन्तु वह जीवन से परे हो गया और उसका वास्तविक रूप, उसकी वैचारिक - सैद्धांतिक संकल्पनाओं तथा उनकी संरचना के स्वरूप में निहित है। वे अपने विशिष्ट सीमित अर्थों तथा तार्किक नियमों से निर्धारित होते हैं (इसकी विस्तार से व्याख्या किसी और संदर्भ में की जायेगी)। यदि गणित को उसके सारतत्व की दृष्टि से पढ़ाया जाए तो उसे जीवन के संवेग तथा उपयोगिताओं से संबंधित नहीं किया जा सकता जो कि साहित्य, इतिहास जैसे विषयों में संभव है। गणित में अधिकतर अज्ञात चर को किसी संकेत से प्रदर्शित करते हैं, जैसे- मान लीजिए दी गई समस्या में हल की संख्या x है । यह अमूर्तिकरण है जो विशिष्ट वस्तु या संख्या से भिन्न है। इसी प्रकार काल्पनिक संख्याएँ गणित की विशिष्ट परिस्थिति के विस्तार के साथ जन्म लेती हैं और उन्हीं अर्थों में इनका अस्तित्व

है । $x^2 = -1$ का हल $\sqrt{-1}$ एक ऐसी संख्या है जिसका कोई वास्तविक मूर्तमान अस्तित्व नहीं है । अत: इसे जीवन की मूर्त सत्ताओं से इंगित नहीं किया जा सकता। शिक्षणशास्त्र तथा मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से बच्चों को शुरू में उपयोगी और जीवंत समस्याओं के जरिये गणित सिखाया जा सकता है। लेकिन बहुत जल्द अर्थात बीज गणित आरंभ होते ही इनसे दूर और आगे निकल जाना होगा ।

गणित को प्रयोगात्मक बनाने की बात भी काफी हद तक गणित की प्रकृति से अनभिज्ञ लोग ही करते हैं क्योंकि इस विषय का सौंदर्य और साधारणीकरण की शक्ति शुद्ध गणित है न कि प्रयोगात्मक । भौतिक शास्त्र में भी सैद्धांतिक भौतिकी का स्थान प्रयोगात्मकता भौतिकी से 'ऊँचा' है । आइंस्टीन का सापेक्षतावाद एक सिद्धांत वैचारिक ही है । यहाँ तक कि उनके द्वारा खोजा गया $E= mc^2$ समीकरण भी प्रयोग पर आधारित नहीं है, बल्कि वैचारिक सूत्र से ही निकाला गया है। सन् 1905 में प्रतिपादित यह समीकरण सन् 1935 में प्रयोग द्वारा जांचा गया। शोर्डिंगर तो यह तक कहते हैं कि भौतिक शास्त्र में प्रयोग दूसरे दर्जे का सृजन है। इनसे हम यह निष्कर्ष निकालने पर बाधित होते हैं कि किसी विषय को उपयोगी बनाकर अथवा उसमें प्रयोगात्मक पक्ष पर जोर देकर विषय को सिखाने से उसकी प्रकृति या नियति निर्दिष्ट नहीं हो सकती। लेखक विज्ञान के एक उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट करना चाहेगा कि किसी संकल्पना को प्रयोगात्मक धरातल पर लाकर सीमित कर देना न केवल उसके साथ अन्याय है बल्कि उसके अर्थ को अनर्थ कर देना होता है। कई बार शिक्षक 'गुरूत्व केन्द्र' को प्रयोग द्वारा सिद्ध करके बताते हैं कि गुरूत्व केन्द्र वह बिन्दु है, जिस पर कोई वस्तु संतुलित होती है। एक खोखली अंगूठी का गुरुत्व केन्द्र उसके खाली वृत्त का केन्द्र होता है। वह अंगूठी के बाहर होता है । उस पर उसे कैसे संतुलित करेंगे? इसलिए इसे प्रयोग द्वारा प्रदर्शित नहीं किया जा सकता । वास्तव में गुरूत्व केन्द्र की परिभाषा वह बिन्दु है, जिसके चारों ओर उसका (वस्तु का) द्रव्यमान समान रूप से वितरित होता है। यह एक काल्पनिक (हाइपोथेटिकल) बिन्दु है। प्रयोग जनित, कोई वास्तविक बिन्दु नहीं।

इस विषय में एक और भ्रान्ति को समझने से गणित की प्रकृति के विषय में ज्यादा स्पष्टता आयेगी । कुछ 'शिक्षाशास्त्री' गणित के बारे में गणित जाने बिना राजनेताओं की तरह अपनी राय देते हैं । गणित अपनी प्रकृति के कारण अपने अधिगम उद्देश्यों में बहुत सीमित है। कई 'शिक्षाशास्त्री' बिना सोचे समझे इसकी प्रकृति को विकृत करने को तत्पर रहते हैं। गणित मूलत: संज्ञान प्रधान है। इसमें कौशल बहुत कम है । इससे भी कम इसमें राग का समावेश है । इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि गणित सृजन में आनन्द न हो या सौंदर्यपरकता न हो । यह अमानविक बिल्कुल नहीं है। गणित के सृजनकर्ता को वही आनन्द आता है, जो कविता लेखक को । परन्तु इस को ग्रहण करने वाले व्यक्ति कविता से प्रभावित होने वाले व्यक्तियों के समान नहीं होते । यद्यपि कई गणितज्ञ साहित्य, दर्शन तथा संगीत के प्रति उतने ही संवेदनशील थे, जितना कोई भी संवेदनशील व्यक्ति हो सकता है । परन्तु गणित की समझ के प्रति हर संवेदनशील या बहुत संवेदनशील व्यक्ति भी कुशल हो यह आवश्यक नहीं ।

गणित को कृत्रिम तरीकों से रुचिकर बनाना गणित सृजन तथा अधिगम दोनों के लिए हानिकारक है । गणित में प्रोजेक्ट विधि लाभकारी नहीं है, क्योंकि यह गणित की प्रकृति की समग्रता को समेट नहीं सकती । जिस प्रकार हमारी संस्कृति में तंत्र-विद्या को अध्यात्म की अपेक्षा घटिया माना जाता है । उसी प्रकार गणित संबंधी पहेलियां रुचिकर होते हुए भी दूसरे दर्जे की गणितीय समझ या निराकरण हैं। गणित की आत्मा इसकी सूक्ष्मता और साधारणीकरण की क्षमता है, जो विशिष्ट या समस्या-हल तरीके से प्राप्त नहीं की जा सकती।

गणित क्या है ?

अभी तक इस लेख में गणित के संबंध में व्याप्त भ्रांतियों पर विचार किया गया; अब इस की प्रकृति पर चर्चा करेंगे । शास्त्रीय ढंग से देखें कि गणित मूलत: क्या है ? तो इस प्रश्न के उत्तर में यह बताना आवश्यक होता है कि गणित में तीन वैचारिक-परम्परा (विचारधारा के स्कूल) के लोग हैं । पहला स्कूल तर्कशास्त्रीय (लोजिसिस्ट) विचारधारा पर आधारित है, जिसमें ब्रट्रेंड रसल मुख्य हैं। दूसरा फार्मलिस्ट स्कूल है, जिसमें जर्मन गणितज्ञ हिलबर्ट अग्रणी हैं, और तीसरा इन्ट्यूशनलिस्ट स्कूल है। हम यहाँ इन विभिन्न वैचारिक दृष्टिकोणों से गणित को परिभाषित नहीं करेंगे बल्कि इनकी मूल स्थापनाओं को समझेंगे ।

1. गणित में चर इसकी विशेषता है। चर एक संकेत को प्रदर्शित करता है जो किसी विशेष समुच्चय में कोई भी मूल्य धारण कर सकता है। इसका मूल्य दी गई अन्य शर्तों पर निर्भर करता है।

2. यह कुछ प्रस्थापनाओं और स्वयं-सिद्ध मान्यताओं (प्रोपोजीशनस) पर आधारित होता है । ये प्रस्थापनाएं परिभाषाओं पर निर्भर करती हैं ।

3. गणित तर्क के नियमों पर भी आधारित होता है । इसके कारण इसकी संरचना विशिष्ट हो जाती है ।

4. फार्मेलिस्ट स्कूल के अनुसार इसकी अपनी संरचना का रूप ही महत्वपूर्ण है । इसके रूप तथा संकल्पनाओं को अर्थ दिया जाता है, उनमें अर्थ निहित नहीं होता ।

5. गणित में एक सिद्धांत है जिसे रसल एग्जीयम ऑफ एक्सक्ल्यूडिड मिडिल' कहते हैं, अर्थात गणित में कोई प्रोपोजीशन सत्य होती है और उसका उलट (नेगेशन) असत्य होता है, या प्रोपोजीशन असत्य होती है तो उसका उलट सत्य होता है । बीच में कुछ नहीं होता ।

6. गणित के स्वयंसिद्ध प्रक्रम की एक मूल विशेषता है- सुसंगतता (कन्सिसटेंसी) अर्थात प्रक्रम की कोई दो स्वयंसिद्ध मान्यताएं एक दूसरे के प्रतिकूल नहीं होतीं। एक ही मान्यता में यदि p सत्य है तो -p (नेगेशन) साथ साथ सत्य नहीं हो सकता ।

उपरोक्त विशेषताओं में विशेषता 5 तथा 6 गणित की सत्यापन विधि का आधार हैं और गणित को एक विशिष्ट रूप देती हैं ।

गणित का विधि-सिद्धांत और उसकी सीमा

गणित की सत्यापन विधि में एक तर्क ($p \Rightarrow q$) के सिद्धांत पर आधारित है । अर्थात माना p एक प्रिपोजीशन है और q दूसरा, इनमें निहितार्थ संबंध हो सकता है कि p के होने पर q का होना निर्धारित है। यह संबंध कार्य-कारण के रूप में न होकर तर्क के रूप में निहित है । इससे विज्ञान और गणित का अन्तर निश्चित होता है । विज्ञान की विधि कार्य-कारण के संबंध पर निर्भर करती है। इसके लिए प्रयोगात्मक सत्यापन की आवश्यकता होती है । जबकि गणित अपनी सत्यापन विधि में प्रयोगात्मक जाँच (एम्पीरिकल वेरीफेकेशन) पर निर्भर नहीं करता । किसी त्रिभुज के तीन कोणों का योग दो समकोणों के बराबर होता है । यदि यह प्रमेय स्वयंसिद्ध मान्यताओं, परिभाषित प्रोपोजीशन्स तथा तर्क के आधार पर सत्य सिद्ध हो जाती है, तो फिर चाहे लाखों लोगों द्वारा मापे गए कोणों की माप का योग दो समकोण न हो तब भी यह सत्य है । क्योंकि इसकी सत्यता प्रयोग या अनुभव से प्रमाणित नहीं होती ।

इस प्रमेय का तार्किक प्रमाण ही सत्य है । यह बात विज्ञान की सत्यापन विधि पर लागू नहीं होती । विज्ञान में किसी निष्कर्ष को यदि प्रयोग द्वारा नकार दिया जाए तो सैद्धांतिक प्रमाण भी नकार दिया जाता है । अत: गणित अपनी सत्यापन विधि में विज्ञान से अधिक व्यापक है और सीमित भी । इसके सीमित होने की व्याख्या अभी बाकी है ।

गणित को कृत्रिम तरीकों से रुचिकर बनाना गणित सृजन तथा अधिगम दोनों के लिए हानिकारक है । गणित में प्रोजेक्ट विधि लाभकारी नहीं है, क्योंकि यह गणित की प्रकृति की समग्रता को समेट नहीं सकती । जिस प्रकार हमारी संस्कृति में तंत्र-विद्या को अध्यात्म की अपेक्षा घटिया माना जाता है । उसी प्रकार गणित संबंधी पहेलियां रुचिकर होते हुए भी दूसरे दर्जे की गणितीय समझ या निराकरण हैं। गणित की आत्मा इसकी सूक्ष्मता और साधारणी-करण की क्षमता है जो विशिष्ट या समस्या-हल तरीके से प्राप्त नहीं की जा सकती।

पहले इसके साधारणीकरण के व्यापक होने को समझ लिया जाए । इससे विज्ञान की अपेक्षा इस विषय की सूक्ष्मता का अहसास हो जाएगा । विज्ञान में दूरी की माप एक बड़ी समस्या है। जब तक विज्ञान और गणित, जगत की वास्तविकता को मापने और उसके संख्यात्मक ज्ञान तक सीमित था, तभी तक दूरी का अर्थ समझ आता था । सरल रेखा खींचकर उसके दो बिंदुओं के बीच की दूरी एक पैमाना निश्चित करके नाप ली जाती थी । परन्तु जब सरल रेखा का अस्तित्व ही न हो तथा सिद्धांत यह आ जाए कि धरा तथा स्पेस दोनों वक्र हैं तो सरल रेखा कहाँ खींची जाएगी । इसी प्रकार बिंदु का भी अस्तित्व नहीं है । अत: बिन्दु तथा सरल रेखा मानसिक रचनाएँ हैं और उनका भौतिक अस्तित्व नहीं है, अर्थात बहुत हद तक वे *लिमिटिंग केस* हैं । वे किसी सदैव परिवर्तित होने वाली स्थिति की एक सीमित संभावना हैं । जैसे किसी वक्र के एक बिन्दु पर स्पर्श रेखा Pq वह स्थिति है जब Pq_1, Pq_2, Pq_3 .....Pq_n क्रमश: ऐसी स्थिति में आ जाते हैं जब $n \to \infty$ तो qn_1 P पर आ जाता है। वास्तव में यह कभी नहीं होता । लेकिन इसे सीमा संभावना मान लेते हैं। गणित अपनी संकल्पनाओं को संकल्पनाएं ही मानता है और उनके बारे में कोई निश्चित अर्थ या परिभाषा नहीं देता। गणित इन संकल्पनाओं को आदिम (प्रीमिटिव) तथा सहजानुभूत (इन्च्यूटिव) यथार्थ मानता है। ऐसा ही एक यथार्थ संख्याओं का समुच्चय है ।

एक और अभिधारणा (पोस्च्यूलेट) है कि शून्य (स्पेस) में स्थित बिन्दुओं को संख्याओं से संबंधित किया जा सकता है। एक आयामी रेखा पर ऐसी दो संगत संख्याओं के, जो उन बिंदुओं से संबंधित है, पूर्ण अन्तर को दूरी कहते हैं । अगर दो बिंदु धरातल पर हैं तो इनसे दो संख्याओं के *क्रमगत युग्म* संबंधित होंगे तथा धरातल दो आयामी होगा । यदि यह युग्म (पेयर) x_1y_1 या x_2y_2 है, तो दूरी = $\sqrt{(x_1-x_2)^2 + (y_1-y_2)^2}$ होगी । जब धरातल तीन आयामी होगा अर्थात शून्य (स्पेस) में बिंदु हैं तो तीन संख्याएं संबंधित होंगी तब AB की दूरी = $\sqrt{(x_1-x_2)^2 + (y_1-y_2)^2 + (z_1-z_2)^2}$ होगी। यदि यह जगत अनन्त (n) आयामी हो तो दो बिन्दुओं के बीच की दूरी $\sqrt{(x_1-x_2)^2 + (y_1-y_2)^2 + (z_1-z_2)^2 + \ldots\ldots + (n_1-n_2)^2}$ होगी । जगत (n) आयामी नहीं है लेकिन (n) आयामी जगत में दो

बिन्दुओं के बीच दूरी मापने का सूत्र है और सत्य है । इस प्रकार गणित किसी संभावित अनन्तआयामी जगत के संदर्भ में भी सूत्र उपलब्ध करवाता है । यहां 'संभावित' शब्द का इस्तेमाल इसलिए किया गया है कि अभी तक तो विज्ञान ब्रह्माण्ड को चार आयामी ही मानता है । तीन स्पेस के और चौथा समय का ।

गणित में साधारणीकरण की इतनी व्यापक क्षमता के होते हुए भी यह अपनी विधि में बहुत सीमित है। इसका कारण 'एक्सक्ल्यूडिड मिडिल' की प्रस्थापना (प्रिपोजीशन) है। इससे अपरोक्ष विधि में हम प्रमेय का प्रतिलोम सत्य मान लेते हैं और विरोधाभास पर पहुंचते ही यह सिद्ध हो जाता है कि इसका प्रतिलोम असत्य है अत: प्रमेय सत्य सिद्ध हो जाती है । जैसे $\sqrt{2}$ अप्रमेय संख्या है । इस बात को सिद्ध करने के लिए इसे प्रमेय संख्या मान लेते हैं और फिर विरोधी निष्कर्ष पर पहुँचकर कह देते हैं कि यह प्रमेय संख्या नहीं है । इसका अर्थ है कि यदि -p (नेगेशन) असत्य है तो p सत्य होगा । इस मान्यता का आधार गणितीय प्रमेय को यह अर्थ देता है कि या तो प्रमेय सत्य है, या उसका प्रतिलोम सत्य होगा। बीच में कुछ नहीं । यह प्रस्थापना गणित की सत्यापन विधि की संकीर्ण सीमा को अभिव्यक्त करती है । इससे एक परिणाम यह निकलता है कि गणित के तर्क के अर्थ विशिष्ट और सीमित हैं । उन्हें जीवन से संबद्ध क्षेत्र में लागू करना भारी भूल होगी ।

तर्क शास्त्र से भी जीवन का सत्य निर्धारित करना बड़ी भारी भूल होगी । इसको हम भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक उदाहरण से स्पष्ट करेंगे। एक फिल्म थी 'अर्थ' । उसका नायक अपनी पत्नी को छोड़ किसी दूसरी स्त्री के साथ रहने लगता है । फिर एक दिन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि वो इस स्त्री के साथ निबाह नहीं कर सकता है और लौटकर अपनी पत्नी के पास वापस आता है । और उससे कहता है कि वह (पत्नी) उसे स्वीकार कर ले । पत्नी पूछती है कि इन परिस्थितियों में यदि वह (पति) उसके स्थान पर होता तो क्या वह उसे स्वीकार कर लेता ? वह नकार देता है । तब वह उससे कहती है कि फिर वह भी उसे स्वीकार नहीं करेगी। लेखक का मानना है कि गणितीय समीकरण मानवीय संबंधों पर थोपना बड़ी भूल है । यदि $a = b$, तो $b = a$ ऐसे निष्कर्ष कुछ गणितीय समुच्चयों पर लागू हो सकते हैं। जीवन के यथार्थ पर नहीं। गणित और तर्कशास्त्र दोनों संवेग विहीन हैं । दूसरा, गणित में p और -p साथ-साथ नहीं हो सकते और इनके बीच में भी कुछ नहीं होता, परन्तु जीवन में ये साथ-साथ भी होते हैं । छोटी-सी बात है । एक प्रश्न है, जो एक व्यक्ति दूसरे से पूछता है- ठीक ठाक हो ? उत्तर मिलता है ठीक हैं भी और नहीं भी। ऐसा उत्तर सार्थक है, निरर्थक नहीं। कविता विरोधाभासों से सुन्दर और सरल अभिव्यक्ति बन जाती है। जैसे - 'बहुत दिन हुए, बहुत दिन से, अब तो/न भूले ही हो और न याद आए'। यह एक मानसिक स्थिति की (p तथा - p का साथ-साथ होना) बहुत सुन्दर अभिव्यक्ति है । अत: गणित की भाषा तथा निष्कर्ष सटीक होते हुए भी बहुआयामी नहीं हैं । इसके अर्थ उसके अनुशासन में निहित और सीमित होते हैं ।

गणित का सौंदर्य और क्षमता उसके उपयोगी होने में इतनी नहीं, जितनी उसके सूक्ष्म और व्यापक साधारणीकरण के साथ-साथ उसके निष्कर्षों के अकाट्य होने में है। उसका सौंदर्य उसकी संरचना के स्वरूप में अन्तर्निहित है, उसके प्रयोग में आने की क्षमता में नहीं। अन्त में हार्डी के एक कथन से इस लेख को समाप्त करना चाहेंगे। हार्डी कहते हैं कि हम गणितज्ञ ऐसे दर्जी हैं जो कई आस्तीनों वाला कोट सिलते हैं । जब कोई एक कोट दो आस्तीनों वाला बन जाए और किसी को बिल्कुल फिट बैठ जाए तो वह खुश हो जाता है, तो हम भी खुश हैं । वैसे हमने किसी व्यक्ति के लिए कोट नहीं बनाया था। यह बात गणित के उपयोग पर पूरी तरह उतरती है।

गणित एक प्रकार से वास्तविक सत्यता को अपनी ही परिसीमाओं में सीमित (रिड्यूस) करता है। यह वास्तविकता ज्यों की त्यों नहीं है । यहाँ इस बात को दो ही उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया जा रहा है। एक ही संख्या की संकल्पना, प्राकृत संख्याएं वस्तुएं नहीं है। इसी प्रकार दो वस्तुओं के बहु समुच्चयों में संख्या 'दो' तत्व उभयनिष्ठ है। जैसे एक वस्तु के अनगिनत समुच्चयों से संख्या एक व्युत्पन्न (डिराइवड) तथा उन अनगिनत समुच्चयों से परे (ट्रान्सेन्ड) का सत्य है । एक पत्थर, एक फूल, एक गाय, इनमें सब में एक तत्व उभयनिष्ठ है । वस्तुओं के अस्तित्व तथा गुणों से एकपन की संकल्पना परे है । इस गुण को संख्याओं का गणनत्व (कार्डिनेलिटी) कहते हैं । 1+1= 2 में भी वस्तुओं का योग नहीं बल्कि गणन (कार्डिनल) गुण का योग है । गणनत्व संख्याओं का सारतत्व है। उसी से संख्याओं में क्रम पैदा होता है और क्रम पैदा करने के गुण को क्रमसूचकता (ओर्डिनेलिटी) कहते हैं । इस गुण से ऐसे संबंध निकलते हैं, जैसे 2 एक से बड़ा है तथा उससे एक अधिक है । इस योग में भी वस्तुएं नहीं उनकी संख्या के होने की संकल्पना का गुण प्रयोग में आ रहा है।

इस बात को समझाने का अधिक सरल उदाहरण क=ख है। क, तथा ख दो भिन्न वस्तुएं होती हैं, परन्तु उनकी संख्या में अवतरित गुण ही बराबर होता है । जैसे एक व्यक्ति की ऊँचाई तथा किसी पेड़ की ऊँचाई बराबर होने का अर्थ है कि वे वस्तुएं बराबर नहीं हैं। बल्कि उनकी ऊँचाई, संख्या में अवतरित होकर बराबर है यानि व्यक्ति तथा पेड़ के परस्परव्यापी (औवरलैपिंग) गुण ही समान हैं। इस प्रकार गणित संपूर्ण नहीं, बल्कि अवतरित वास्तविकता से संबंधित होती है । ◆